

दलित वर्ग और सामाजिक न्याय

मिथिलेश कुमार गौतम*

अछूत के रूप में दलित वर्ग का अस्तित्व समाज में आया। दलित शब्द का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। संस्कृत के एक शब्द से उत्पन्न इस शब्द का आशय भारतीय समाज के सभी शोषित एवं सुविधाविहीन वर्गों से है— जैसे— अनुसूचित जातियाँ/जनजातियाँ एवं पिछड़ी जातियाँ। आजकल इस शब्द का प्रयोग पूर्व में अस्पृश्य कहलायी जाने वाली अनुसूचित जातियों को सम्बोधित करने के लिए किया जाता है। समाज के इस तबके के लोगों, को उनकी उल्लेखनीय संख्या और देशव्यापी फैलाव के बावजूद कब और कैसे समाज की मुख्य धारा से अलग, अन्त्यज, अवर्ण अथवा पंचम के रूप में दासतापूर्ण जीवन जीने को बाध्य होना पड़ा, इस बाबत निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है।

भारत में सदियों से दलित सामाजिक एवं आर्थिक रूप से शोषित, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक रूप से दासतापूर्ण, हाशिए पर जीवन बिताते आए हैं। भारतीय समाज सदियों से शोषित, तिरस्कृत, वंचित, अपमानित लोगों को वर्तमान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है। पहले इनको दलित न कहकर अन्त्यज्य, पाशिवक अस्पृश्य एवं अछूत कहा जात था। यह वर्ग भारतीय समाज के उस हिस्से से सम्बन्धित है जो जाति ग्रस्त भारतीय समाज में सामाजिक दृष्टि से निचले पायदान पर स्थित रही है। वर्तमान नेताओं ज्योतिबाराव फुले एवं बी०आर० अम्बेडकर को जाता है। उनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त बदतर होने के कारण ही डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने इस वर्ग का नाम दलित रखा। सरकारी अभिलेखों में पहले भी अछूतों को दलित ही कहा जाता था। सन् 1931 ई० की जनगणना के समय असम के जनगणना अधीक्षक ने सुझाव रखा कि ये जातियाँ अत्यन्त बहिष्कृत ही है अतः इनका नाम दलित ही रखा जाए। सन् 1932 ई० में पूना पैक्ट गांधी जी ने इन्हें हरिजन कहा।

भारतीय समाज लगभग हजार जातियों में बंटा हुआ है। इन्हीं जाति, उपजातियों में सामाजिक बन्धन और सामाजिक भेदभाव सामाजिक अन्तःक्रियाओं पर रोक लगाता है। दलित वर्ग की सामाजिक स्थिति विभिन्न कालों में कभी भी ठीक नहीं रही है, जिसका स्पष्टीकरण विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों के उद्धरण से होता है। स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड अध्याय 19 और ब्रह्मखण्ड के अध्याय 10 के दृढमति के उपाख्यान में कहा गया है—

उपदेशों न कर्तव्यों जातिहीनस्थ कस्यचित्
उपदेश महान दोष उपाध्यायस्य विद्यते।
यदि चोपादेशद्र विप्र शूद्र चैतानी कर्हिचित्
त्यजेयब्रह्मणा विप्रं तं ग्रामाद ब्रह्मसंकुलात्
शूद्राय चोपण्टारं चाण्डालवत् त्यजेत्
शूद्र चाक्षरसंयुक्त। दुरतः परिवर्जयते।

अर्थात् हीन जाति के व्यक्ति को कभी उपदेश नहीं देना चाहिए यदि वह उपदेश करेगा तो बहुत दोष लगेगा, यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र को उपदेश करे तो दूसरे ब्राह्मण बहिष्कार करें। उसे चण्डाल की तरह त्याग दें और गांव के बाहर निकाल दें, पढ़े—लिखे शूद्र को दूस से ही त्याग दें। शूद्र को वेदों से बहुत ही सख्ती से दूर रखने का आदेश है।

माना जाता है कि हिन्दुओं में व्याप्त सामाजिक संगठन की बुनियाद चार वर्णों की वृद्धि के साथ शुरू हो गयी, जिसमें हिन्दू समाज विभाजित हो गया यह चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हालांकि निहितार्थ से जो मालिन्य रेखा से नीचे हैं उन्हें पंचम बुलाया गया है। इसे कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त से वैधता प्रदान की गई पंचम को अछूत माना गया। अस्पृश्यता एक विश्वास प्रणाली है जो बहिष्कार, भेदभाव और हिंसा की मानविकता बनाता है तथा बुनियादी मानव अधिकार, नागरिकता के

* शोधछात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

अधिकार और विकास के अधिकार का उपयोग करने से रोकते हैं। कुछ मनुष्य पवित्र और दूसरे नहीं हैं। भारत में एक व्यक्ति की धार्मिक स्थिति किसी जाति के व्यक्ति के जन्म से निर्धारित होती है। समाज की बुनियादी संरचना, वर्गीकृत असमानता पर आधारित है जो धार्मिक ग्रन्थों द्वारा स्वीकृत है और अभ्यास से व्यक्तियों द्वारा भलीभांति मानी जाती है।

व्यक्ति निजी तौर पर अपने आपको अपने में महसूस करते हुए समाज में भी अपना स्थान हासिल करना चाहता है। इस चाहत की पूर्ति की प्रतिक्रिया में प्रतिरोधकता है चूँकि हर एक की जपनी-अपनी चाहत होती है और यह चाहत सामूहिक तौर पर आपस में टकरा जाती है और इस संघर्ष से बचना अभावग्रस्तता और अतिरिक्त प्राप्ति किसी को बलवान तो किसी को कमजोर बना देती है। इन्सान की नीतिगत जीवन प्रेरणा और सामाजिक प्रतिरोध का टकराव मानवता का अन्त कर देती है। यह टकराव का जंगलीपन त्याग कर मानवता या इन्सानियत की प्राप्ति के लिए सभ्य समाज के कुछ मूल्यों की खोज दुनिया के प्रारम्भ से ही करते आ रहे हैं। इन्हीं में से न्याय एक स्वतन्त्र मूल्य पाने का सर्वोत्तम आदर्श है, इसके साथ-साथ समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारा, यह आदर्श मूल्य की श्रेणियों में से एक है लेकिन इन मूल्यों संकल्पनाओं का अर्थ और स्वीकार्यता देश, काल और परिस्थितियों के विकासक्रम में भिन्नता दिखायी देती है।

मनुष्य समाज किसी भी देश-काल का हो उसमें न्याय तथा अन्याय की समस्या हर समय विद्यमान रही है। न्याय की अवधारणा के बारे में जो विभिन्नताएँ हैं वह देश-काल व परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा है। इसको दो धाराओं में विभक्त किया जा सकता है, पहली धारा पश्चिमी विद्वानों का है, जिसमें सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू को शामिल किया जा सकता है। सुकरात व प्लेटो ने न्याय को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया क्योंकि वे न्याय को ही सदगुण ज्ञान मानते थे, जिसमें हर व्यक्ति का कर्तव्य निश्चित था तथा वह किसी के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, ठीक इसी प्रकार अरस्तू ने भी समाज को व्यवस्थित करने के लिए दो तरह की न्याय प्रणाली के बारे में चर्चा की जिसमें पहली योग्यात को तरजीह दी तथा दूसरी धारणा समाज में समन्वय लाने के लिए क्षतिपूर्ण न्याय की धारणा का प्रतिपादन किया, परन्तु उस समय सामाजिक न्याय की अवधारणा को बिल्कुल परे रखा गया।

प्राचीन भारतीय दर्शन या साहित्य में जो न्याय की अवधारणा थी वह चातुर्यवर्ण व्यवस्था पर आधारित थी जिसमें समाज के सर्वोच्च पायदान पर ब्राह्मण और निम्न स्तर पर शूद्र को रखा गया। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण व क्षत्रिय को समाज के सारे अधिकार प्राप्त थे, जैसे स्वतन्त्रता और राजनैतिक व आर्थिक तथा शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार। जबकि शूद्रों को इस सामाजिक व्यवस्था में समाज के सारे अधिकारों से वंचित कर उसको केवल यह कर्तव्य सौंप दिया जिसमें वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों का सेवक बनके रह गया या दूसरे शब्दों में समाज का गुलाम बनके रह गया, जिसका कार्य सेवा करना था। इस प्रकार वैदिक वर्णव्यवस्था को वर्तमान न्याय की अवधारणा में न्यायपूर्ण समाज कहना ही पर्याप्त है। यद्यपि बौद्ध साहित्य में न्याय की अवधारणा को अपनाया गया था वह काफी हद तक आधुनिक न्याय की अवधारणा के समीप है। जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में महान आन्दोलन का आरम्भ किया जो अम्बेडकर तक चलता आया और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं, कर्म पर अवलम्बित है। इसलिए ब्राह्मण भी पतित हो सकता है और शूद्र भी अपने को पूजा योग्य बना सकता है। बुद्ध ने साफ शब्दों में कहा था—

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।

कम्मना वसलो होति, कम्मना होति ब्राह्मणो।

अर्थात् जन्म से न कोई वृशल (शूद्र) होता है, न जन्म से कोई ब्राह्मण। कर्म से ही कोई शूद्र और ब्राह्मण होता है। मध्यकालीन और आजाद भारत से पूर्व जो समाज में न्याय की अवधारणा थी वह काफी स्पष्ट नहीं था क्योंकि इस काल में भारत विदेशी आक्रान्ताओं के द्वारा शासित हो रहा था जिसका आधार शक्ति और स्वहित था।

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान समाज सुधारकों द्वारा सामाजिक न्याय पर जोर दिया गया तथा कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए विशेष कार्यों का सम्पादन भी किया। आजाद भारत ने एक संविधान अपनाया, डॉ० अम्बेडकर की योग्यता देखकर ही भारतीय संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया। डॉ० अम्बेडकर ने संविधान की जो प्रस्तावना लिखी उसमें स्पष्ट लिखा है कि भारत का यह संविधान न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व के सिद्धान्तों की धुरी पर अवस्थित है।

सामाजिक न्याय का सार तत्व समता का सिद्धान्त जो मानव जाति की मूलभूत एकता और भातृत्व की भावना पर आधारित है। सामाजिक न्याय इसी समता के सिद्धान्त का व्यावहारिक रूप है जिसमें समाज के हर व्यक्ति का दर्जा समाज में समान होता है। सामाजिक न्याय का दर्शन मुख्यतः सामाजिक सम्बन्धों की विवेचना करता है। हम जब सामाजिक न्याय की बात करते हैं तो उसका सीधा अर्थ होता है कि यह जाति व्यवस्था पर आधारित भारत की असमान समाज व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का शंखनाद है।

सामाजिक न्याय का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है जिसमें सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, संवैधानिक और धार्मिक न्याय शामिल है। समाज में अस्पृश्य या अछूत समझा जाने वाला एक तिहाई दलित समाज जिसे पेट भरने के लिए बासी रोटी पर निर्भर रहना पड़ता है, मैला ढोना पड़ता है जो अशिक्षित है, बेसहारा है, बेघर-बार है, भिखारी है, गरीब और बेरोजगार है। ये निर्बल वर्ग के लोग हैं समाज की जो व्यवस्था है उसी के कारण उनकी ऐसी हालत है। सामाजिक न्याय के द्वारा इस वर्ग की समस्या को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है।

इस प्रकार सामाजिक न्याय के जो मूल आधार सामाजिक न्याय, धार्मिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनैतिक न्याय हैं उन्हीं का विरोध करने वाले आज सबसे बड़े सामाजिक न्याय का ढिंढोरा पीटते दिखते हैं। जब तक दलित कमजोर वर्ग निर्धन उपेक्षित भारतीय समाज में रहेंगे और उन्हें सामाजिक न्याय नहीं मिलेगा तब तक देश प्रेम और राष्ट्रियता की भावना सुदृढ़ नहीं होगी। राष्ट्रीय एकता के लिए बन्धुत्व की भावना आवश्यक होगी। मात्र स्वतन्त्रता सामाजिक न्याय का प्रमाण नहीं है। सामाजिक न्याय में सबसे बड़ा रोड़ा सनातनवाद, वेदवाद, साम्प्रदायवाद और मनुवाद है।

सामाजिक न्याय का सबसे बड़ा हनन एक वर्ग विशेष के लिए शिक्षा के दरवाजे को बन्द करके किया। अशिक्षित अपने प्रगति के सारे दरवाजे बन्द करके बैठे और कुछ शिक्षकों के दास बनकर रह गए। डॉ० अम्बेडकर ने दलित वर्गों के शिक्षा के प्रसार को बढ़ावा देने के लिए अध्ययन केन्द्र और पुस्तकालय खोलकर बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। इस सभा ने कृषि और औद्योगिक विद्यालय खोलकर दलित वर्गों की आर्थिक दशा को सुधारने का और उन्हें शिक्षित करने का एक सफलतम कार्य किया। डॉ० अम्बेडकर इस कहावत में यकीन करते थे, 'गुलाम को बताओ कि वह एक गुलाम है और वह अपनी गुलामी के खिलाफ बगावत कर देगा।' और मानवाधिकारों को हासिल करने के लिए अछूतों में चेतना जगाने के लिए वे अक्सर यह दोहराया करते थे। डॉ० अम्बेडकर आजीवन अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध लड़ाई की। वे विशुद्ध रूप से संवैधानिक आधार पर सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूँढना चाहते थे। उन्हें यकीन था कि अगर यह तरीका नहीं अपनाया गया तो इससे समाज में अराजकता का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। डॉ० अम्बेडकर जी ने असहनीय प्रथाओं तथा परम्पराओं और उस वक्त व्याप्त वर्ण व्यवस्थाओं की जोरदार आलोचना कर और समाज के पिछड़ों और दलितों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान, समानता और स्वतन्त्रता की भावना भरकर समाज में एक नए युगी की शुरुआत की।

नवीन पीढ़ी की भूमिका मानवतावादी और विज्ञानवादी होनी चाहिए। उन्हें यह समझना होगा कि सामाजिक न्याय के पुरोधे चाणक्य और मनु नहीं हैं बल्कि बुद्ध, कबीर और डॉ० अम्बेडकर हैं। नई पीढ़ी अपने दायित्व को समझे और संविधान, कानून व्यवस्थाओं, संस्थाएं, समाज, सरकार द्वारा जो भी व्यवस्थाएं गयी हैं उनसे हित साध्य को चुने जो सामाजिक न्याय विनाशक है उन्हें ठुकरा दें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरोड़ा, एन0डी0 अवस्थी, एस0एस0 राजनीति सिद्धान्त एवं राजनीतिक चिन्तन, हर आनन्द पब्लिकेशन प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2007
2. प्रसाद, वाल्मीकि, बौद्ध धर्म और सामाजिक न्याय, सम्यक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003
3. जाटव, डी0आर0, सामाजिक न्याय का सिद्धान्त समता साहित्य जयपुर, 1993
4. शर्मा, उर्मिला, शर्म एस0के0 पाश्चात्य राजनैतिक चिन्तन, एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2001
5. वी0 गोस्वामी, संसदीय लोकतन्त्र और उसका विकल्प प्वाइण्टर पब्लिकेशन, जयपुर, 2004
6. देसाई, ए0आर0 नेशनल इण्टरग्रेशन एण्ड रिलीजन पापुलर बुक डिपो, बम्बई
7. अवस्थी, कामेश्वर एवं अवस्थी राम कुमार, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 1992
8. सिंह, आर0जी0 भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1986
9. सिंह, डॉ0 गोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, जयपुर, 1994
10. मिलर, डेविड द ब्लैक वेल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पॉलिटिकल थॉट, न्यूयार्क, 1987
11. अम्बेडकर, डॉ0 बी0आर0 धर्म परिवर्तन धर्म परिवर्तन सम्बन्धी डॉ0 अम्बेडकर व्याख्यानों का हिन्दी संकलन, झिंझक, अम्बेडकर रक्षक परिषद, 1981
12. हसनैन, प्रो0 नदीम समकालीन भारतीय समाज, एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, भारत बुक सेण्टर लखनऊ, 2011
13. गुप्त, राजेश डॉ0 अम्बेडकर और सामाजिक न्याय, प्रथम संस्करण 1994
14. जाटव, डी0आर0, डॉ0 अम्बेडकर का समाजदर्शन, 1996
15. मिश्र, डॉ0 हृदय नारायण, सामाजिक राजनीतिक दर्शन के नए आयाम, 1998
16. सिंह, डॉ0 राम गोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010
17. धवन, शकुन्तला, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अ पोस्टल ऑफ सोशल जस्टिश योजना, अप्रैल, 1991
18. कृष्ण गोपाल बाबा साहब : व्यक्ति और विचार सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
19. सिन्हा, होगिन्दर, डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ए क्रिटिकल स्टडी विजय प्रकाशन पटना, 1993
20. सिंह, पुत्री, सिंह कमला, शर्मा राजेन्द्र भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
21. चित्रकारा मदन गोपाल, डॉ0 अम्बेडकर एण्ड सोशल जस्टिश नई दिल्ली, 2002
22. सागर एस0एन0 सामाजिक न्याय, सागर प्रकाशन, मैनपुरी, 1999
23. ठाकुर, हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
24. सिंह, डॉ0 रामगोपाल, सामाजिक न्याय और दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण, 2010
25. www.google.co.in